



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2020; 6(1): 65-69

© 2020 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 07-11-2019

Accepted: 09-12-2019

मीना देवी

Research Scholar, Sanskrit
Department, G.D.H.G. College,
Moradabad, M.J.P.R.U.,
Bareilly, Uttar Pradesh, India

डॉ. गीता परिहार

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स (पी0जी0)
कॉलेज, मुरादाबाद (उ0प्र0)

पातञ्जलयोग दर्शन में क्लेश मीमांसा

मीना देवी, डॉ. गीता परिहार

क्लिश्नन्ति इति क्लेशाः' व्युत्पत्ति के अनुसार क्लेश दुःख, पीड़ा प्रदान करने वाले को क्लेश कहा जाता है। क्लेश शब्द क्लिश् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बनता है जिसका अर्थ भी पीड़ा, दुःख तथा कष्टादि होता है। पातञ्जलयोगदर्शन में पाँच क्लेशदायक शक्तियों का वर्णन इस प्रकार है –

“अविद्याऽस्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ।”¹

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश पाँच क्लेश हैं। व्यासदेव, आचार्य वाचस्पति मिश्र जी तथा विज्ञान भिक्षु आदि भाष्यकार क्लेश का 'अर्थ' विपर्यय² करते हैं। क्लेश के विपर्ययत्व को स्पष्ट करते हुए तत्त्ववैशारदीकार कहते हैं – “अविद्यातावद्विपर्यय³ एव' अर्थात् अविद्या तो विपर्यय रूप ही है, अन्वयव्यतिरेक पर निर्भर रहने वाले अस्मितादि क्लेश भी अविद्योपादानक होते हैं अतः वे भी विपर्यय रूप ही हैं क्योंकि अविद्या के नष्ट होते ही अस्मितादि का भी नाश हो जाता है।

व्यासदेव यह भी बताते हैं कि 'पञ्चक्लेश जब प्रवाहित होते हैं, तब वे सत्त्वादि गुणों के कार्य उत्पन्न करने रूप अधिकार को दृढ़ करते हैं, अतः कार्यरूप परिणाम को अवस्थापित करते हैं, प्रकृति-बुद्धि-अहंकार आदि परम्परा से प्रचलित कार्य-कारण रूप प्रवाह को उत्पन्न करते हैं और कर्मों से क्लेश तथा क्लेशों से कर्म इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के अधीन होकर जाति, आयु, भोग रूप कर्म विपाक को निष्पन्न करते हैं।⁴

इस प्रकार स्पष्ट है कि अविद्या से राग, राग से अविद्या इसी क्रम से ये एक दूसरे सहयोगिता के अधीन हैं और दुःख का प्राथमिक कारण होने के कारण ये अविद्यादि क्लेश जड़ से नष्ट किये जाने चाहिए। इन पंचक्लेशों का विवरण निम्नलिखित है –

1 अविद्या: अविद्या का स्वरूप बताते हुए सूत्रकार ने लिखा है –

“अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या”⁵

अर्थात् अनित्य, अशुचि, दुःख तथा अनात्मपदार्थों में क्रमशः नित्य शुचि, सुख तथा आत्मबुद्धि होना 'अविद्या' है। अविद्या अनन्त भेदों वाली है किन्तु उपर्युक्त सूत्र के आधार पर मूलतः ये चार प्रकार की होती है –

(i) **अनित्य में नित्यबुद्धि:** आचार्य व्यासदेव, वाचस्पति मिश्र, विज्ञानभिक्षु एवं नारायणतीर्थ आदि सभी ने एक मत से स्वीकार किया है अनित्य कार्य में नित्य बुद्धि करना अर्थात् अनित्यकार्य को नित्य मानना अविद्या है। “जैसे पृथ्वी नित्य है अर्थात् कुछ लोग महाभूतों को नित्य मानकर उनमें लय होने के लिए उनकी उपासना करते हैं।⁶

(ii) **अशुचि में शुचिज्ञानरूप अविद्या:** अपवित्र पदार्थों के साथ पवित्र पदार्थों की तरह व्यवहार करना अशुचि में शुचित्व बुद्धि रूप अविद्या होती है। उक्त अविद्या को स्पष्ट करने के लिए सभी व्याख्याकारों ने महा अपवित्र शरीर को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। यथोक्तम् –

‘स्थानाद् बीजादुपप्लम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः ॥’⁷

Corresponding Author:

मीना देवी

Research Scholar, Sanskrit
Department, G.D.H.G. College,
Moradabad, M.J.P.R.U.,
Bareilly, Uttar Pradesh, India

(iii) दुःख में सुखबुद्धि: व्यासभाष्य में लिखा हुआ है कि –

‘परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च
दुःखमेव सर्वं विवेकिनः इति । तत्र सुखख्यातिरविद्या ।’⁸

अर्थात् परिणाम, ताप और संस्काररूप दुःखों के कारण तथा गुणों की वृत्ति के विरोध के कारण विवेकीजन के लिए सब दुःख ही है। इन दुःखों में सुख का बोध अविद्या है।

(iv) अनात्म में आत्मबुद्धि: अनात्म पदार्थों में आत्मा का ज्ञान चतुर्थ प्रकार की अविद्या है जैसा कि व्यासभाष्य में कहा गया है जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है – ‘पुत्र, स्त्री, पश्वादि चेतन या शय्यासनादि अचेतन वस्तु को अपने रूप (आत्मरूप) ग्रहण करके उसकी सम्पन्नता पर अपनी सम्पन्नता और उनकी विपन्नता पर अपनी विपन्नता मानता हुआ शोक करता है, ऐसा मानने वाले सब अविवेकी हैं।’⁹

उपर्युक्त अविद्या के विषय में एक अन्य बात भी व्यासभाष्य से स्पष्ट होती है कि अविद्या भाव पदार्थ रूप में है। तभी ये समस्त क्लेशों का कारण है। व्यासदेव, वाचस्पतिमिश्र तथा विज्ञानभिक्षु नारायणतीर्थ आदि विद्वान अविद्या की ‘अमित्र’ तथा ‘अगोष्पद’ के समान भावात्मक सत्ता मानते हैं।

2 अस्मिता

अविद्या के चतुर्थ भेद अनात्म में आत्मबुद्धि से ही ‘अस्मिता’ नामक क्लेश का उद्भव होता है। हृक् शक्ति (द्रष्टा, पुरुष, आत्मा) एवं दर्शन शक्ति (बुद्धि एवं उसके विषय) में जो अभिन्नता की प्रतीति होती है, उसे ‘अस्मिता’ कहते हैं। जैसा कि सूत्रकार ने लिखा है –

‘दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता’¹⁰

अर्थात् दृक्शक्ति रूप पुरुष तथा दर्शन शक्ति रूप बुद्धि की जो, अभेद न होने पर भी, अभेद जैसी प्रतीति होती है, वह अस्मिता नामक द्वितीय क्लेश होता है।

तत्त्ववैशारदीकार अस्मिता के विषय में कहते हैं कि अविद्या का कार्य तथा राग का उपजीव्य बताते हैं। वे ‘दृक्’ व ‘दर्शन’ इन दोनों शक्तियों को आत्मतत्त्व व अनात्मतत्त्व रूप में अधिग्रहण करते हैं। वे आगे कहते हैं कि अनात्मतत्त्व रूप बुद्धि में अविद्या के द्वारा आत्मज्ञान लक्षण की प्रतीति सी होती है वह वास्तविक एकरूपता नहीं होती है वस्तुतः वही ‘अस्मिता’ होती है।

योगवार्तिककार अस्मिता के विषय में लिखते हैं –
‘स्वरूपतो धर्मतश्चात्यन्तमेकाकारो विपर्ययोऽस्मिताऽहंकार इत्युर्थ’¹¹

अर्थात् स्वरूपतः और धर्मतः निष्पादित अत्यन्त अभेदाकारात्मक भ्रमप्रत्यय (विपर्यय) अस्मिता कहलाता है। यही अस्मिता अहंकार का पदवाच्य है।

इस प्रकार अस्मिता में एक कर्तृरूप है और दूसरा कर्म रूप फिर दोनों एक कैसे हो सकते हैं। दोनों में एक का भ्रम ही अस्मिता है जो अविद्या का परिणाम (कार्य) कहा जाता है।

3 राग

राग का लक्षण बताते हुए सूत्रकार लिखते हैं – ‘सुखानुशयी रागः’¹² अर्थात् सुखभोग के अनन्तर चित्त में रहने वाली जो अभिलाषा है वह ‘राग’ कहा जाता है।

मीमांसा इस प्रकार करते हैं – “मात्रपदादविद्याऽऽदिव्यावृत्तिः जीवन्मुक्तेच्छाव्यक्ते राग एव न भवति ।”¹³

इस प्रकार राग के विषय तत्त्ववैशारदीकार व व्यासदेव का एक मत है। वे दोनों राग को अस्मिता का कार्य मानते हैं, जबकि

योगवार्तिककार ‘मात्र’ शब्द जोड़कर राग को अविद्यादि से पृथक् कर देते हैं।

4 द्वेष

सूत्रकार द्वेष के विषय में लिखते हैं –

‘दुःखानुशयी द्वेषः’¹⁴ अर्थात् दुःख का अनुवर्ती क्लेश ‘द्वेष’ (संज्ञक) होता है।

व्यासदेव ‘द्वेष’ नामक क्लेश की मीमांसा करते हुए लिखते हैं – ‘दुःखाभिज्ञस्य दुःखानुस्मृतिपूर्वो दुःखे तत्साधने वा यः प्रतिघो मन्युर्जिघांसा क्रोधः स द्वेष इति ।’ अर्थात् पहले दुःख का अनुभव किये हुए व्यक्ति में, अनुभव किये गये दुःख के साधन (शत्रु आदि) के प्रति जो प्रतिघ, जिघांसा क्रोध पैदा होता है उसे द्वेष कहते हैं। वाचस्पतिमिश्र तथा विज्ञानभिक्षु ने भी इसकी अलग से कोई व्याख्या नहीं की है। योगवार्तिककार ने मात्र इतना ही कहा है कि ‘राग’ क्लेश ‘द्वेष’ का उदय होता है।

5 अभिनिवेश

अभिनिवेश का मूल द्वेष होता है। ‘अभिनिवेश’ के विषय में पतंजलि जी लिखते हैं – ‘स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः’¹⁵ अर्थात् मूर्खों की तरह विद्वान को भी होने वाला स्वभाव सिद्ध मरणभय ‘अभिनिवेश’ (संज्ञक) क्लेश है।

प्रत्येक प्राणी में यह इच्छा निरन्तर बनी रहती है कि उसका कभी अभाव न हो, वह सदैव जीवित रहे। इस प्रकार की तीव्र इच्छा के पीछे अभिनिवेश नामक क्लेश ही कारण होता है। इसके लिए योग के सभी व्याख्याकार (व्यासदेव, आचार्य वाचस्पति तथा विज्ञानभिक्षु) एक मत यही स्वीकार करते हैं कि मरणविषयक स्मृति से पूर्वजन्मीय मरणानुभव सिद्ध होता है। व्यासदेव स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि –

“कृमेरपि जातमात्रस्य प्रत्यक्षानुमानागमैरसम्भावितो
मरणत्रासउच्छेददृष्ट्यात्मकः पूर्वजन्मानुभूतं
मरणदुःखमनुमापयति ।”¹⁶

आशय यह है कि जिसने पहले कभी भी मरण-भय का प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम द्वारा अनुभव नहीं किया है, ऐसे सद्यः जात शिशु को भी स्वभावतः उच्छेद दृष्टि स्वरूप जो यह मरणभय होता है, वही पूर्वजन्म में अनुभव किये गये मरण दुःख का अनुमान कराता है। यह मरणत्रासक्लेश- जन्म भय न केवल मूढ़ अपितु विद्वानों को भी होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह तथ्य तो स्पष्ट हो जाता है कि पाँचों क्लेशों के मूल में अविद्या निहित है और पूर्व क्लेश उत्तरवर्ती क्लेश का कारण है। ये क्लेश सामान्यतः एक दूसरे के कारण कार्य होते हुए भी विरोधी होते हैं जैसे जहाँ राग होगा वहाँ द्वेष नहीं होता है। अतः ये क्लेश भिन्न-भिन्न काल में भिन्न – भिन्न रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

(ख) क्लेश की अवस्थाएँ

महर्षि पतंजलि द्वारा क्लेश की चार अवस्थाएँ सूत्रकार द्वारा इस सूत्र से स्पष्ट की गयी हैं –

‘अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।’¹⁷

अर्थात् प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार अवस्था वाले पश्चाद्वर्ती अस्मिता आदि क्लेशों की उत्पत्ति का कारण अविद्या है। इस प्रकार क्लेश चार अवस्थाओं का वर्णन है –

व्यासभाष्यानुसार – ‘चेतसि शक्तिमात्रप्रतिष्ठानां बीजभावोपगमः इति प्रसुप्तिः ।’¹⁸

(i) **प्रसुप्त अवस्था:** योगियों के चित्त में जो अस्मितादि क्लेश है वे प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं। अर्थात् अस्मितादि क्लेश का विषयों की ओर उन्मुख न होना उनका सोना प्रसुप्त है।

(ii) **तनु अवस्था :** क्लेशों की प्रसुप्त अवस्था के वर्णन उपरान्त तनु अवस्था का वर्णन प्रस्तुत करते हैं – क्लेश प्रतिपक्षी अर्थात् विरोधी क्रियायोग (तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान) के प्रबल होने पर अस्मितादि क्लेश तनु हो जाते हैं। अर्थात् दुर्बल हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं। जैसाकि व्यासभाष्य में लिखा है – ‘प्रतिपक्षभावानोपहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति’।¹⁹

(iii) **विच्छिन्न अवस्था:** विच्छिन्नावस्था के विषय में व्यासदेव लिखते हैं –

‘विच्छिद्य – विच्छिद्य तेन तेनात्मना पुनः पुनः समुदाचरन्तीति विच्छिन्नाः’।²⁰

अर्थात् क्लेश बीच-बीच में खण्डित होते हुए उस-उस रूप में पुनः आविर्भूत होते हैं, वही क्लेश की विच्छिन्नावस्था कही जाती है। भाष्यकार उदाहरण देते हैं जैसे जब राग प्रबल होता है तब द्वेष अभिभूत हो जाता है, द्वेष का यह अभिभव ही उसका विच्छिन्न होना कहा जाता है।

(iv) **उदार अवस्था:** भाष्यकार क्लेश की उदारावस्था के विषय में लिखते हैं – ‘विषये यो लब्धवृत्ति सः उदारः’।²¹

जो अस्मितादि क्लेश अपने विषय में लब्ध अवसर है अर्थात् कार्य के प्रति तत्पर है, वे क्लेश ‘उदार’ अवस्था वाले कहे जाते हैं। यही क्लेश योगियों को कष्ट देता है। लेकिन जो प्रथम तीन प्रसुप्त, तनु तथा विच्छिन्न क्लेश हैं वे योगियों को कष्ट नहीं देते। लेकिन ये तीनों उदार अवस्था को प्राप्त होने पर क्लेश के अंकुर उत्पन्न करने में असमर्थ नहीं होते। अर्थात् ये निश्चय ही उदारभूमि में पहुँचकर कष्टदायक फल के रूप में अंकुरित होते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जाता है कि सभी प्रकार के क्लेशों की जड़ में अविद्या ही विद्यमान रहती है। अन्वय व्यतिरेकि में भी यह बात सिद्ध होती है।

क्लेश के कारण

सांसारिक भौतिक विषयों के उपभोग काल में साधारण पुरुष सुखानुभूति तो करते हैं किन्तु उनके प्रतिकूल रूप दुःखानुभूति की कल्पना नहीं कर पाते हैं जबकि योगी जन दोनों स्थितियों से भलीभाँति परिचित होते हैं इसी बात की पुष्टि सूत्रकार के निम्नलिखित सूत्र से होती है—

परिणामतापसंस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।²²

अर्थात् परिणामजन्यदुःख, तापजन्यदुःख तथा संस्कारजन्य के कारण एवं गुणवृत्ति विरोध के कारण विवेकी के लिए सभी फल दुःखरूप ही होते हैं। कहने का आशय है कि विषय-सुख इसलिए दुःखरूप होते हैं क्योंकि उनमें परिणाम दुःख, ताप दुःख एवं संस्कार – दुःख मिश्रित रहते हैं।

1 परिणाम दुःख

परिणाम दुःख के विषय में व्यासदेव लिखते हैं –

सर्वस्यायं रागानुविद्धश्चेतनाऽचेतनसाधनाधीनः सुखानुभव इति सुखावस्थायामपि योगिनमेव क्लिश्नाति।²³ प्राणियों को चेतन तथा अचेतन सभी साधनों में जो सुखदायी होते हैं उनमें राग तथा जो दुःखदायी होते हैं उनसे द्वेष होता है। यह परिणाम दुःखता योगी को तो सुखभोगावस्था में ही कष्टप्रद होती है। भोगी इसकी अनुभूति सुखकाल में नहीं कर पाते हैं।

तत्त्ववैशारदीकार इसको ‘मधुविषसंपृक्तान्नोपभोगेऽपि सुखानुभवः प्रत्यात्मवेदनीयाः’²⁴ कहते हैं। महाभारत में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है –

“न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ।।²⁵

महा0आदि0 85 / 12

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विषय सुख के बाद जो सुखानुभूति होती है वह वस्तुतः सुख नहीं सुखाभास अर्थात् दुःख ही होता है और सुख-दुःख दोनों की वास्तविकता को केवल योगी ही समझ पाता है। भोगी की समझ से परे होता है।

व्यासदेव ‘परिणामदुःखता’ का विवेचन करने के पश्चात् ‘तापदुःखता’ का विवेचन करने जा रहे हैं –

2 तापदुःख

‘तापदुःख के विषय में सामान्य रूप से यह समझ लेना चाहिए कि तापदुःख, परिणामदुःख के समान ही है ऐसा व्यासदेव का मानना है²⁶ लेकिन योगवार्तिककार कहते हैं कि तथापि इनमें मौलिक अन्तर है। “तापदुःख में पूर्वकाल तथा उत्तरकाल में सर्वदा ही दुःख विद्यमान रहते हैं जबकि परिणामदुःख में उत्तरकाल में दुःख विद्यमान रहते हैं।”²⁷ कहने का तात्पर्य यह है कि ‘परिणामदुःख में विषयभोग के पश्चात् ही दुःख की अनुभूति होती है जबकि तापदुःख में पूर्व तथा उत्तर दोनों ही काल दुःख-प्रद है – यही दोनों दुःखों में अन्तर है।

तत्त्ववैशारदीकार ने भी व्यासदेव की भाँति ‘तापदुःख’ को ‘परिणामदुःख’ के समान ही माना है।

इस प्रकार उपर्युक्त ‘परिणामदुःख’ तथा ‘तापदुःख’ के विवरण से स्पष्ट होता है कि ‘परिणामदुःख’ की अनुभूति केवल योगी को ही होती है, भोगी को नहीं। जबकि ‘तापदुःख’ की अनुभूति भोगी को भी भोगकाल में होती रहती है।

3 संस्कारदुःख

‘सुख तथा दुःख के अनुभव से उत्पन्न संस्कार, संस्कारदुःख होता है। व्यासदेव लिखते हैं ‘सुखानुभवात्सुख दुःख संस्काराशय’ इति।²⁸ अर्थात् सुख की अनुभूति से सुख के संस्कार की वासना तथा दुःख की अनुभूति से दुःख के संस्कार की वासना होती है। इस प्रकार अनुभव से संस्कार तथा संस्कार से अनुभव का चक्र अनादि काल से चला आ रहा है।

तत्त्ववैशारदीकार ‘संस्कारदुःख के सन्दर्भ में लिखते हैं कि जिसका आशय इस प्रकार है – ‘सुखः-दुःख के अनुभव से संस्कार, संस्कार से स्मृति, स्मृति से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा रागद्वेष से ही व्यक्ति सुख-दुःख के लिए मन, वचन तथा शरीर से चेष्टा करता है और शुभाशुभ कर्मों में प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से पुण्यापुण्य की उत्पत्ति, पुण्यापुण्य से विपाक का अनुभव, जन्म से पुनः सुख-दुःख की अनुभूति, सुख-दुःखानुभूति से सुख-दुःख – संस्कार आदि का चक्र चलता रहता है। इस तरह सुख-दुःख के अनुभव से उत्पन्न जो दुःख का जनक है वह संस्कार है इसी कारण इसको संस्कार दुःख कहा जाता है।²⁹

इस प्रकार अनादिकाल से चला आ रहा यह दुःख योगी को ही, प्रतिकूल होने के कारण, उद्विग्न करता है भोगी संसारी व्यक्ति को नहीं।

4 गुणवृत्ति विरोधजन्य दुःख

‘सांख्यदर्शन के अनुसार समस्त सांसारिक पदार्थों का मूल उपादान कारण प्रकृति को माना जाता है चूँकि प्रकृति त्रिगुणात्मक (सत्व, रज, तम) होती है अतः तज्जन्य पदार्थ भी त्रिगुणात्मक होते हैं। जो आपस में विरोधी होते हैं जैसाकि व्यासदेव ने लिखा है – ‘गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।’³⁰ अर्थात् गुणवृत्ति

विरोध के कारण सम्पूर्ण विषय तत्त्वज्ञानी (विवेकी) के लिए दुःख रूप ही होते हैं।

घ- क्लेश निवारणोपाय

पूर्वोक्त शीर्षकों में अविद्यादि पंचक्लेश, क्लेश के कारण तथा अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है इनकी उपर्युक्त विवेचना से यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वोक्त सभी क्लेशों में अविद्या निहित है। अतः अविद्या का अभाव ही क्लेश निवारण का उपाय भी है। आचार्य पतंजलि जी क्लेश निवारण के लिए योग को ही सर्वोत्तम साधन बताते हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है – 'तपश्चाध्यायेश्वरप्रणिधानि क्रियायोग' और यह क्रिया योग ही समाधि की भावना के लिए तथा क्लेशों को क्षीण करने के लिए एक श्रेष्ठ साधन है। यथोक्तम् – 'समाधिभावनाथः क्लेशतनूकरणार्थश्च'³¹

व्यासदेव ने स्पष्ट रूप से लिखा है – 'स ह्यासेव्यमानः समाधिम्भावयति क्लेशांश्च प्रतनूकरोति।'³² अर्थात् अच्छी प्रकार से सेवन किया गया तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधानरूप 'क्रियायोग' 'समाधि' की उत्पत्ति करता है और क्लेशों को सूक्ष्म अर्थात् दुर्बल बनाता है।

क्रियायोग सर्वप्रथम क्लेशों को 'तनु' करता है तभी प्रसंख्यानरूप अग्नि क्लेशों को अग्नि में भुने हुए बीजों के सदृश अप्रसवधर्मी बनाने में समर्थ होता है। यदि क्रियायोग के द्वारा क्लेशों को तनु न किया जाय अर्थात् क्लेश उदारावस्था में हों तो प्रसंख्यानरूप अग्नि द्वारा उनका बन्धीकरण में करना कठिन हो सकता है इसलिए योगवार्तिककार ने लिखा है –

'प्रतनूकृतांश्च शुष्केन्धन तुल्यान् कृतान् क्लेशान् क्रियायोगः।'³³ अर्थात् क्रियायोग अविद्यादि क्लेशों को शुष्क काष्ठ की भाँति शक्तिहीन बना देता है। परिणामतः प्रसंख्यान अग्नि उसे दग्धबीज की भाँति फिर उसे बन्ध्य बना देता है। इस सम्बन्ध में सूत्रकार ने लिखा है कि –

'योगाड.गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।'³⁴

अर्थात् योग के अंगों का सफल अभ्यास करने से अशुद्धि का क्षय होने पर विवेकख्यात्युदय पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश होता है। कहने का आशय है कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग के आठ अंगों के अनुष्ठान से अविद्यादि क्लेश तथा शुक्ल-कृष्ण आदि कर्मरूप अशुद्धि के समाप्त हो जाने पर, विवेक ज्ञान के उदय होने तक यथार्थ ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है।

व्यासदेव भी उपर्युक्त मत को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं कि –

'तेषामनुष्ठानात् पंचपर्वणो विपर्ययस्याशुद्धिरूपस्य क्षयः नाशः। तत्क्षये सम्यग्ज्ञानस्याभिव्यक्तिः।' आगुणपुरुषस्वरूपविज्ञानादित्यर्थः।'³⁵

अर्थात् उनका (अष्टांगयोग) अनुष्ठान से पाँच पर्व वाली विपर्ययरूपिणी अशुद्धि का नाश हो जाता है, विपर्ययात्मिका अशुद्धि का क्षय होने पर यथार्थज्ञान का आविर्भाव होता है, जैसे-जैसे योग साधनों का अनुष्ठान (अभ्यास) किया जाता है वैसे-वैसे विपर्ययरूपिणी अशुद्धि धूमिल पड़ती जाती है। फिर जैसे-जैसे विपर्ययरूपिणी अशुद्धि क्षीण होती जाती है, वैसे-वैसे अशुद्धि क्षय के अनुपातानुसार ज्ञान का प्रकाश क्रमशः बढ़ता जाता है। ज्ञान के प्रकाश का यह वर्धन विवेक ख्याति की पराकाष्ठा को प्राप्त करता है।

इस प्रकार क्रिया योग तथा अष्टांगयोग के निरन्तर अभ्यास के द्वारा अविद्यादि पंच क्लेशों का निवारण किया जा सकता है।

संदर्भ

1. पातंजलयोगदर्शनम् – टीकाकार – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – 2/3 – पृ० 140
2. पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – टी० डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – साधनपाद, पृ० 140
3. 'क्लेशा इति विषय पंचविपर्यया इत्यर्थः – पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – डॉ० विमला कर्णाटक – साधनपाद – पृ० 580
4. पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – टी० डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – साधनपाद, पृ० 141
5. पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – टी० डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – 2/5, पृ० 148
6. पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – टी० डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – साधनपाद, पृ० 148
7. पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – टी० डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – साधनपाद, पृ० 149
8. पा०यो० (व्यासभाष्यम्) – डॉ० विमला कर्णाटक – साधनपाद, पृ० 602
9. तथैतदत्रोक्तम् – सर्वोऽप्रतिबुद्ध 'इति' पा०यो० डॉ० विमला कर्णाटक-2, पृ० 602
10. पा० यो० – टी० डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – 2/6, पृ० 153
11. पा०यो० – (योगवार्तिकम्)– टी० – डॉ० विमला कर्णाटक – साधनपाद, पृ० 622
12. पा०यो० – टी०– डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी – 2/7, पृ० 155
13. पा०यो० – (योगवार्तिकम्)– टी० – डॉ० विमला कर्णाटक – साधनपाद, पृ० 629
14. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी 2/8, पृ० 156
15. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी 2/9, पृ० 156
16. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, पृ० 157
17. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, 2/4 पृ० 141
18. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 143
19. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 144
20. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 145
21. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 146
22. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, 2/15, पृ० 177
23. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 178
24. पा०यो० – (तत्त्ववैशारदी)– टी० – डॉ० विमला कर्णाटक, , पृ० 707
25. पा०यो० – (तत्त्ववैशारदी)– टी० – डॉ० विमला कर्णाटक, साधनपाद, पृ० 709
26. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 182
27. पा०यो० – (योगवार्तिकम्)– टी० – डॉ० विमला कर्णाटक – साधनपाद, पृ० 724
28. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 183
29. पा०यो० – (तत्त्ववैशारदी)– टी० – डॉ० विमला कर्णाटक,साधनपाद, पृ० 709
30. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 185
31. पा०यो० – टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, 2/2, पृ० 138
32. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, साधनपाद, पृ० 139

33. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ विमला कर्णाटक,
साधनपाद, पृ० 578
34. पा०यो० – टी० – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी, 2/28, पृ० 235
35. पा०यो० – (व्यासभाष्यम्)– टी० – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी,
साधनपाद, पृ० 236